नागौर-कुमाचन सिटी। पूर्व मुख्यमंत्री वसुन्धरा राजे को ईश्वरीय साहित्य भेंट करते हुए ब्र.कु. बसन्ती।

सूरतगढ़। प्रसिद्ध समाज सेवी,अन्ना हजारे जी को ईश्वरीय सौगात प्रदान करते हुए ब्र.कु. सुनिता एवं मीनू साथ में हैं नारी उत्थान केन्द्र की अध्यक्षा राजेश सिडानी।

कोपरखैरणे-नवी मुंबई। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए ब्र.कु. शीला, समाजसेविका जयश्री पाटील, शिवसेना महिला अध्यक्ष रंजना शिंत्रे, दमयंती आचरे नगरसेविका।

उस्मानाबाद। प्रसिद्ध भागवत कथाकार पदमनाभ व्यास महाराज को ईश्वरीय सौगात देते हए ब्र.कु. सुरेखा, तथा ब्र.कु. विनायकराव पाटील।

वड़ौदा। मंगलवाड़ी कारेलीबाग में 'ऊँ शांति मार्ग' से नामकरण के अवसर पर दीप प्रज्जवलित करते हुए पूर्व डॉ. मेयर पुनम पांचाल, सहायक कमिश्नर मधुसुदन, ब्र.कु. राज, ब्र.कु.डॉ. निरंजना, ब्र.कु.डॉ. जयंत।

वर्धा। विधायक सुरेशभाऊ देशमुख को उनके जन्मदिवस पर ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब्र.कु. माधुरी।

आपको आश्चर्य होता होगा कि जब हमें केवल अपने आप में गहरे उतरना है और हमें अपनी आत्मा का ही ज्ञान प्राप्त करना है तो हम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार आदि पर इतना बल क्यों देते हैं? वस्तुत: यह सब निरर्थक नहीं है। इसका एक तर्कसंगत कारण है।

इस जगत् के मूल सत्य को खोजने के लिए ऋषियों ने सदा आजकल के वैज्ञानिकों की भाँति बाह्य जगत् का विश्लेषण भौतिक, रासायनिक, जैवीय आदि दृष्टि से ही नहीं करते रहे वरन् उन्होंने वस्तु-जगत् को सप्राण और सविज्ञान मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया। प्राचीन ऋषियों को यह जगत् अनेक प्रकार की वस्तुओं का भण्डार दिखाई देता था। मनुष्य से सम्बन्ध रखने के कारण ही उसका कोई प्रयोजन या अर्थ हो सकता है।

स्वभावत: उन्होंने सर्वप्रथम अपना अनुसंधान कार्य वस्तु-जगत् में मानव क्रिया-कलापों से प्रारम्भ किया। यदि बुद्धिमान अनुसंधानकर्ता सावधानीपूर्वक देखे तो वह पायेगा कि किसी भी कार्यक्षेत्र में दो मनुष्यों का व्यवहार एक सा नहीं है। मनुष्य के कर्मो की इस विविधता का कारण खोजना ऋषियों के लिए एक चुनौती थी।

परीक्षा करने पर उन्होंने पाया कि हमारे कार्यों का सीधा सम्बन्ध हमारे विचारों से है। जैसे हमारे विचार होते हैं वैसे ही हमारे कर्म भी दिखाई देते हैं। विचारों की प्रकृति पर कर्म का स्वरूप और गुण निर्भर करता है। अत: उनका यही निर्णय था कि हमारे हृदय के विचार ही मूर्तरूप धारण करके कर्म बन जाते हैं। विचार उदय न होने पर कोई कर्म होना भी सम्भव नहीं है। गहन निद्रा में कोई पक्का दुराचारी भी अपराध करने में असमर्थ है। कोई सन्त भी सुषुप्ति अवस्था में समाज-सेवा का कोई कार्य नहीं कर सकता। विचार लय हो जाने पर कर्म बन्द हो जाता है।धैर्यवान ऋषि अपने अनुसंधान कार्य में लगे रहे और वे मनुष्य के अन्दर उसके विचारों का स्त्रोत खोजने लगे। परिणामस्वरूप उन्होंने देखा कि हमारे विचार सीधे हमारी कामनाओं पर निर्भर करते हैं। कामनाओं का भण्डार वह ज्वालामुखी है जहां से विचारों का लावा फूट निकलता है और भूमि को जलाता हुआ कर्म रूप में दिखाई देता है। कामनाओं की गुणवत्ता और संरचना के अनुसार ही हमारे हृदय के विचार होते हैं और वही विचार परिवर्तित होकर शरीर स्तर पर हमारे कर्म बन जाते हैं।

ऋषियों ने अपना अनुसंधान-कार्य यहां भी नहीं रोका। वे मनुष्य के व्यक्तित्व की गहराई में और अधिक उतरे और कामनाओं का भी कारण खोजना चाहा। आगे पहुंच कर उन्होंने देखा कि **कामनाओं की जंगली घास अविद्या की दलदली भूमि पर उगती है। यद्यपि हम शुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा हैं किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप को भूल बैठे हैं। इसी को आध्यात्मिक भाषा में अविद्या कहते हैं। इस अविद्या ने ही मन, बुद्धि, शरीर और बाह्य जगत् का प्रत्यय बना रखा है। इस शरीर, मन-बुद्धि से तादात्म्य कर अज्ञानी व्यक्ति अपने आप में एक परिच्छिन्न अहंभाव अनुभव करता है जिसे 'जीव-भाव' कहते हैं।** यह भ्रान्ति कितनी ही प्रबल हो किन्तु अपने व्यक्तित्व की गहनता में हमें आत्मा की पूर्णता अनुभव होती है।

अपने इस आत्म-भाव के पाने की दुर्दमनीय इच्छा सभी में रहती है। अज्ञानी लोगों में यह प्रवृति अर्जन, संग्रह भोग आदि रूपों में हाती है। संसार की सीमित वस्तुओं का संग्रह कर कोई भी सीमित मनुष्य अपने को असीम या अनन्त नहीं बना सकता। जीवन के समस्त दु:खों का यही एकमात्र कारण है। अत: दु:खों से बचने का यही उपाय है कि हम अपना अज्ञान सदा के लिए अपने अन्दर से निकाल फेंके और परम सत् के प्रकाश में जीना सीखें। इसे आत्म-प्राप्ति, आत्म-दर्शन या आत्मानुभव कहते हैं।

अब तक हमने देखा कि हमारी आत्म-विस्मृति अर्थात् अविद्या से हमारी कामनाओं का जन्म होता है, कामनाओं से विचार-श्रृंखला उत्पन्न होती है और विचार ही बाह्य जगत् में कर्म रूप से प्रकट होते हैं। इन कर्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप या तो हमारी अविद्या दृढ़ और सघन होती रहती है अथवा वह नष्ट हो जाती है और हमें अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार अविद्या, कामना, विचार और कर्म एक ही वस्तु के विभिन्न नाम है जिनका प्रयोग उनके विविध रूपों के अनुसार व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों पर होता है। आत्मा के स्तर पर जो अविद्या है, वही बुद्धि के स्तर पर कामना है। वही मन के स्तर पर उतर कर विचार बन जाती है और पुन: वही बाह्य संसार में इंद्रिय विषयों के स्तर पर कर्म के रूप में प्रकट होती है। इनमें से किसी एक पर नियंत्रण करने से सब पर नियंत्रण हो जाता है, क्योंकि एक अविद्या के ही शेष तीन रूप हैं।

संसार के सभी धर्मों में नैतिकता और सदाचार के नियमों के मूल में समस्त आध्यात्मिक साधनों के पीछे विद्यमान यही एक तर्क है। आत्मा के स्तर पर सूक्ष्म रूप में वास करने वाली अविद्या का सबसे स्थूल रूप कर्म है। उस पर संयम करने से मन में उत्पन्न होने वाले विचार शुद्ध और नियंत्रित बनते हैं। विचार शुद्ध होने पर निश्चय ही कामनायें भी शुद्ध और परिमार्जित होती हैं। कामनायें जितनी ही शुद्ध होती हैं अविद्या का पर्दा उतना ही पतला और दुर्बल होता है। अविद्या नष्ट होने पर ज्ञान का चमक उठना अवश्यम्भावी है। अत: कर्म की शुद्धता ही वह दिव्य मार्ग है जिससे ज्ञान का उदय होता है।

इसलिए ज्ञान-योग के शिविर में ध्यान करने वाले को सर्वप्रथम दृढ़तापूर्वक नैतिक जीवन जीने का अभ्यास कराया जाता है। उसमें ब्रह्मचर्य का पालन करना पूर्णरूपेण आवश्यक है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल काम-वासना पर नियन्त्रण नहीं है, वरन् उनका अर्थ अपने उपर सब प्रकार से संयम रखना है। अधिक खाना, व्यर्थ की बातें करना, निरूद्देश्य विचरण करना आदि सभी वर्जित है। किसी भी इन्द्रिय-भोग में अधिक प्रवृत्त होना ब्रह्मचर्य का खण्डन है।

ऐसा आध्यात्मिक साधक जब अपनी भौतिक सीमा के बन्धन को तोड़कर बाहर निकलना चाहता है और अपने वास्तविक आत्म-रूप का दर्शन करना चाहता है तो वह ज्ञानयोग करने का अधिकारी माना जाता है। उसे ध्यान के आसन पर बैठकर जिन प्रारम्भिक तैयारियों को करना होता है। जब उसका स्थूल शरीर स्थिर हो जाता है तब वह योग करना प्रारम्भ करता है।

योग का अभ्यास करते हुये जीवन जीने के लिये शास्त्रों में ध्यान-योग की एक निश्चित परिभाषा दी गई है।

''योग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा योगकर्ता अपने समग्र मन से चिन्तन करते हुये विजातीय वृत्तियों को बीच में न आने देकर सदा सजातीय वृत्तियों का प्रवाह होने देता है, जिससे अन्त में विचारों की मात्रा बहुत कम हो जाती है और एक विचार ही शेष रह जाता है।''

हम पहले सूक्ष्म शरीर की संरचना और कार्यों पर विचार करते जानते हुये कि अन्त:करण एक ही वस्तु होते हुये अपने विभिन्न कार्यों के अनुसार मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार कहलाता है। हमने यह भी बताया था कि ये सब एक ही होने के कारण इनमें से किसी एक पर नियन्त्रण करने से शेष पर भी नियन्त्रण हो जाता है। योग वह साधना है जिसमें बुद्धि मन पर अधिकार पा लेती है और मन नियन्त्रित होकर स्थिर हो जाता है। योग मानों मन के विरूद्ध युद्ध करने की वह कला है जिसमें मन के भोगने के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं और वह पकड़ा जाता है। अन्त में उसे कुचल कर समाप्त ही कर दिया जाता है। अत: मन के स्वभाव और उसकी क्रियाओं को भली -भांति समझ लेने पर हम योग में अधिक विश्वास के साथ बैठ सकते हैं और सही विधि से ध्यान कर सकते हैं। शत्रु की शक्ति जान लेने से ही उस पर विजय पाने का भरोसा हो

मन को शांत करिये

योग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा योगकर्ता अपने समग्र मन से चिन्तन करते हुये विजातीय वृत्तियों को बीच में न आने देकर सदा सजातीय वृत्तियों का प्रवाह होने देता है, जिससे अन्त में विचारों की मात्रा बहुत कम हो जाती है और एक विचार ही शेष रह जाता है।